

## राजस्थानी लोक नृत्यों में 'ढोल नृत्य'

डॉ. गोविन्द राम

आर्य समाज स्कूल के पास  
सुमेरपुर, जिला-पाली, राजस्थान

मो -9928357047 मेल [govindcug@gmail.com](mailto:govindcug@gmail.com)

भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर पश्चिम भाग में अवस्थित राजस्थान राज्य भौगोलिक दृष्टि से पूर्व में गंगा-यमुना नदियों के मैदान, दक्षिण में मालवा के पठार तथा उत्तर एवं उत्तर पूर्व में सतलज-व्यास नदियों के मैदानों से घिरा हुआ है। इस राज्य की कहानी गौरवपूर्ण परंपरा की कहानी है। एक ओर पृथ्वीराज चौहान, राणा साँगा, महाराणा प्रताप, वीर दुर्गादास, अमरसिंह राठौड़ आदि द्वारा राज्य का नाम विशेष रूप में गौरवान्वित किये जाने का बोध होता है तो दूसरी ओर राज्य की संस्कृति में समाहित भिन्न-भिन्न रंगों, रूपों एवं कलाओं के दिग्दर्शन होते हैं। राजस्थान की सांस्कृतिक विशेषता को रेखांकित करते हुए डॉ. जयसिंह नीरज लिखते हैं-“देश के परिदृश्य में राजस्थानी का सांस्कृतिक वैभव बेजोड़ है। त्यागमयी ललनाओं, साहसी वीरों और गरिमामयी संस्कृति के इस प्रदेश का भौगोलिक, ऐतिहासिक और प्राकृतिक वैविध्य अनोखा है। यहाँ एक ओर दूर-दूर तक फैली अरावली की श्रृंखलाएँ हैं, तो दूसरी ओर विराट मरुस्थल। एक ओर पूर्वांचल और दक्षिणांचल हरीतिमा के वैभव से युक्त हैं, तो दूसरी ओर बियावान मरु के टीलों का अखण्ड साम्राज्य। उत्तर में गंगानगर से लेकर दक्षिण में डूंगरपुर, बाँसवाड़ा तक और पूर्व में अलवर, भरतपुर से लेकर पश्चिम में जैसलमेर तक फैला यह प्रदेश आकार में ही बड़ा नहीं है, वरन् प्राकृतिक सम्पदा, कलात्मकता वैभव, रहन-सहन, वेश-भूषा, बोली-भाषा, धर्म और दर्शन आदि में भी इतना समृद्ध और सम्पन्न है कि इसकी तह तक संस्कृति-कर्मी अभी भी बहुत कम पहुँच पाये हैं।”<sup>1</sup>

राजस्थानी लोक संस्कृति में समाहित लोक नृत्यों में लोक जीवन की सरसता, सरलता, सहजता के साथ ही साथ लोक गीत, लोक वाद्य, लोक शृंगार एवं कलाओं का समावेश रहता है। लोक जीवन के हृदय में व्याप्त भावों के स्वरूप को प्रकट करते हैं लोक नृत्या। राजस्थान में प्रचलित लोक नृत्य की विशेषता को अंकित करते हुए हरदान हर्ष लिखते हैं-“राजस्थान के लोक-नृत्य राजस्थानी संस्कृति के अनुपम शृंगार हैं। यहाँ की प्रकृति ने राजस्थानी व्यक्ति को एक ओर शारीरिक रूप से कठोर और परिश्रमी बनाया है तो दूसरी ओर मन से उसे कोमल और संवेदनशील। आनन्द के समय में उत्सवादि अवसरों पर वह प्रसन्नता से झूमने लगता है। वह अपनी अंग-भंगिमाओं का अनायास, अनियोजित प्रदर्शन करता है। इस तरह लोग तब सामूहिक रूप से झूमने लगते हैं, वे किसी नियम से बंधे नहीं होते। बढ़ते हुए उत्साह के साथ, किसी लोक-

गीत की लय के साथ, किसी लोक-वाद्य की ताल के साथ उनके अंगों की थिरकन प्रकट होती है, जिसे देशी-नृत्य या लोक-नृत्य कहा जाता है।”<sup>2</sup> राजस्थान के लोक-नृत्य में भवाई नृत्य, घूमर-नृत्य, डंडिया-नृत्य, तेरहताली नृत्य, डांडया नृत्य, कालबेलिया-नृत्य, ढोल नृत्य, थाली-नृत्य, गणगौर नृत्य आदि प्रमुख हैं, जिनमें स्थानीय रंग की छटा भी दृष्टव्य है। राजस्थान राज्य के जिलों में से एक जिला ‘जालोर’ है। ये जिला राज्य के पश्चिम में मरुस्थल क्षेत्र से संबंधित है। इस जिले का ‘ढोल नृत्य’ राज्य के लोक नृत्यों में अपनी एक अलग पहचान बनाए हुए है। ‘जालोर का ढोल नृत्य’ मरुस्थल क्षेत्रों के अलावा अन्य क्षेत्रों में विशेष रूप से विवाह, होली आदि अवसरों पर किया जाता है। जालोर का ‘ढोल नृत्य’ पुरुष-प्रधान नृत्य है। राज्य में जीवन यापन करने वाली सरगरा, ढोली,

भील आदि जातियों द्वारा यह नृत्य किया जाता है। जालोर और ढोल नृत्य से संबंधित एक किंवदंती है जिसे व्यक्त करते हुए डॉ. कालूराम परिहार लिखते हैं-“जब जालोर बसा था उन्हीं दिनों सिवाणा गाँव के खीवसिंह राठौड़ का सरगरा जाति की युवती से प्रेम हो गया और वह सिवाणा छोड़कर जालोर आ गया। यहाँ आकर खीवसिंह ढोल बजाने लग गया और जालोर का ढोल नृत्य प्रसिद्ध हो गया।”<sup>3</sup>

‘ढोल नृत्य’ से संबंधित ‘ढोल’ एक अवनद्ध लोक वाद्य है। अवनद्ध अर्थात् चमड़े आदि से ढका हुआ। अवनद्ध से संबंधित लोक वाद्यों में चंग, डफ, ढोलक, ढोल, नगाड़ा, नौबत आदि हैं। ‘ढोल’ वाद्य को चढ़ाने और उतारने के लिए डोरी में लोहे या पीतल के छल्ले लगे रहते हैं। ढोल का नर भाग डंडे से तथा मादा भाग हाथ से बजाया जाता है। लोक नृत्यों की माधुर्य वृद्धि के साथ ही वातावरण निर्माण एवं भावाभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने में इन वाद्यों की भूमिका किसी भी स्तर से कम नहीं। राज्य में ‘ढोल’ वाद्य को बजाने संबंधी विशेषता व मांगलिक कार्यों में इसके महत्त्व को अभिव्यक्त करते हुए हरदान हर्ष लिखते हैं-“यह एक मांगलिक वाद्य है। विवाह के प्रारम्भ में ढोल के ऊपर भी स्वास्तिक का चिन्ह बनाते हैं। इसका पूजन होता है और इसके रोली चढ़ाते हैं।...राजस्थान में यह बारह प्रकार से बजाया जाता है-एहड़े का ढोल, गेर का ढोल, नाचने का ढोल, झोटी ताल (देवरे के देवी-देवताओं के सामने बजाई जाती है), बारू ढोल (लूट के समय बजाया जाता है), घोड़ चढ़ी का ढोल (दूल्हा घोड़े पर चढ़कर जाता है

उस समय), बरात चढ़ी का ढोल, आरती का ढोल, वार त्योहार का ढोल, सगरी को न्योतो (जीमणे का निमंत्रण) आदि। इसको बजाने के लिए दो आदमियों की आवश्यकता पड़ती है। राजस्थान के कई लोक-नृत्यों में यह बजाया जाता है, जैसे-जालोर का ढोल नृत्य, भीलों का गेर नृत्य और शेखावाटी का कच्छी घोड़ी नृत्य।<sup>4</sup> इन नृत्यों में बजने वाले ढोल की ध्वनियां भिन्न प्रकार की होती हैं जैसे कि 'ढाक्-ढिना, ढाक्-ढिना, ढाक्-ढिना.....', 'धिना-धिना, धिक-धिका.....', 'धाक धिना, तिरकट-तिना.....', आदि।

'ढोलनृत्य' में ढोल का आकार सामान्य ढोल से काफी बड़ा होता है। ढोल नृत्य का मुख्य कलाकार अपने शरीर पर तीन ढोल बाँधकर उन्हें बजाता है। शरीर में बाँधे तीन ढोलों में से प्रथम ढोल वह अपने सिर पर रखता है, द्वितीय ढोल सामने की तरफ रखता है और तृतीय ढोल पीछे की तरफ रखता है। इन तीनों ढोलों को इस तरह से शरीर में बाँधा जाता है कि नृत्य नर्तक अपनी कलाएँ या नृत्य को प्रस्तुत करते हुए किसी तरह की परेशानी अनुभव न करे और ढोल भी अपने स्थान से खूले नहीं। मुख्य कलाकार के साथ अन्य सहयोगी कलाकार भी होते हैं जो कि नृत्य के साथ साथ वादन में भी उपयुक्त भूमिका निभाते हैं।

'ढोल नृत्य' में मुख्य कलाकार ढोल को पहले 'थाकना शैली' में बजाना शुरू करता है। थाकना शैली से तात्पर्य है एक तरह से वादन से पहले की भूमिका के लिए बजाये जाने वाली लय व ताल। ज्यों ही थाकना समाप्त हो जाता है तब अन्य नर्तक कोई मुंह में तलवार लेकर, कोई हाथों में डण्डे लेकर, कोई भुजाओं में रूमाल लटकाकर लयबद्ध अंग संचालन करके नृत्य करने लगते हैं। नृत्य के दौरान अनेक जोशीली भाव-भंगिमाओं को ढोल नृत्य के कलाकार प्रदर्शित करते हैं। थाकना शैली के अलावा भी अन्य अलग-अलग शैलियों में ढोल का वादन होता है। ढोल वादन के साथ नृत्य दृश्य एक तरफ जोश से भरपूर होता है तो दूसरी तरफ गति से ढोल नृत्य में नाचते हुए, वादन करते हुए कलाकार जोश में आकर एक दूसरे के ढोल पर भी डंका मारते हैं। ढोल नृत्य से संबंधित नर्तक उछलते-कूदते हुए आपस में तारतम्य बनाए रखते हैं। इस नृत्य में नर्तक ताल और लय की एक शृंखला बनाते हैं। 'ढोल नृत्य' में एक तरफ राजस्थानी लोक संस्कृति के दिग्दर्शन होते हैं तो दूसरी तरफ लोक कला की मार्मिकता एवं रसात्मकता की अनुभूति होती है।

\*\*\*\*\*

संदर्भ ग्रंथ :-

1. राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा-सं. डॉ. जयसिंह नीरज व डॉ. बी.एल.शर्मा, पृ.-5, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, संस्करण- 2003,
2. राजस्थानी भाषा साहित्य और संस्कृति-हरदान हर्ष, पृ.-208 आशीर्वाद पब्लिकेशन, जयपुर, संस्करण 2004
3. राजस्थान के लोकनृत्य और लोकनाट्य-डॉ.कालूराम परिहार, पृ.-26, रायल पब्लिकेशन जोधपुर, प्रथम संस्करण-2009
4. राजस्थानी भाषा साहित्य और संस्कृति-हरदान हर्ष, पृ.-218 आशीर्वाद पब्लिकेशन, जयपुर, संस्करण 2004

## पंत जी के काव्य में सामाजिक चेतना

डॉ. कृष्ण बिहारी रॉय

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी

शा. कन्या महाविद्यालय सीधी, जिला-सीधी (म.प्र.)

**सारांश** - स्वस्थ समाज से ही स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण सम्भव है। हमारे देश में सामाजिक चेतना लाने के लिए पुरातन से ही प्रयास किये जा रहे थे। हिन्दी साहित्य में सामाजिक चेतना लाने का महान् कार्य भक्तिकालीन साहित्य में विशेष रूप से देखा जा सकता है। जब हमारे देश में जाति-पाँति, ऊँच-नीच, छुआछूत, धर्मांधता, रूढ़िवाद, अन्ध विश्वास चरम पर था तब भक्ति कालीन कवियों ने विशेषतः संत कबीरदास जी ने इन सामाजिक बुराइयों को समाप्त कर समरसतावादी समाज स्थापित करने का सन्देश दिया था, किन्तु रूढ़िवादी संस्कृति में जकड़े हुए लोग दुर्भाग्यवश आज भी जाति, वर्ग तथा धर्म की दृष्टि मानसिकता से मुक्त नहीं हो सके। यही कारण था कि युग-युग से अभिशापित, शोषित जन गण के अन्दर चेतना लाने का महान् कार्य सुमित्रानन्दन पंत जी ने किया। अन्ध रूढ़ियों तथा मृत आदर्शों को काटकर युग मानव के संघर्षों को नव-चेतन में डबने का सन्देश दिया।

**मुख्य शब्द**- सामाजिक, चेतना, रूढ़िवाद, जाति-पाँति, विज्ञान, राष्ट्र, साम्प्रदायिक, समरसता, शोषित, शोषक।

छायावाद के आधार स्तंभों में प्रमुख स्थान रखने वाले कवि सुमित्रानन्दन नन्दन 'पंत' जी अपने काव्य लेखन के शुरूआत से समष्टि को दृष्टिगत रखते हुए लेखनी चलाई थी। आपकी स्वतंत्रता के पश्चात् की कविताओं में जीवन के यथार्थ का चित्रण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। जन-मन को जीवन का अमर संगीत सुनाने वाले कवि सुमित्रानन्दन जी की अप्राकृत पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि वह आम जनता के जीवन की वास्तविकता की अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने लिखा है कि-

“मैं गाता हूँ/मैं प्राणों का  
स्वर्णिम पावक बरसाता हूँ/ मैं जन-मन को  
ज्वाला का पथ बतलाता हूँ/ जन धरणी पर  
जीवन का स्वर्ण बसाता हूँ।”<sup>1</sup>

कहना न होगा कि कवि पंत जी अपनी कविता में आम-जनता के अन्तरमन को छूने वाली अभिव्यक्ति दी है। वह कभी भी किसी भी तरह की चेतना को अस्वीकार नहीं किया है। उत्तरा की भूमिका में स्वीकारते हुए लिखा है कि- “मैंने परिस्थितियों की चेतना के सत्य को कभी अस्वीकार नहीं किया है।”<sup>2</sup> उन्होंने कलाकार को 'सेना नायक या सैन्य वाहक' नहीं 'युग सन्देश वाहक' माना है। जीवन के संघर्षों की प्रतिध्वनियाँ हर जगह सुनाई पड़ती है। कवि सुमित्रानन्दन जी ने जीवन-संघर्ष से कभी मुख नहीं मोड़ा। उन्होंने जीवन के संघर्ष को व्यक्त करते हुए लिखा है कि-

“मैं गाता हूँ/ मैं प्राणों का  
स्वर्णिम पावक बरसाता हूँ/ मैं जन-मन को  
ज्वाला का पथ बतलाता हूँ/ जन धरणी पर  
जीवन का स्वर्ण बसाता हूँ।”<sup>1</sup>

कहना न होगा कि कवि पंत जी अपनी कविता में आम-जनता के अन्तरमन को छूने वाली अभिव्यक्ति दी है। वह कभी भी किसी भी तरह की चेतना को अस्वीकार नहीं किया है। उत्तरा की भूमिका में स्वीकारते हुए लिखा है कि- “मैंने परिस्थितियों की चेतना के सत्य को कभी अस्वीकार नहीं किया है।”<sup>2</sup> उन्होंने कलाकार को 'सेना नायक या सैन्य वाहक' नहीं 'युग सन्देश वाहक' माना है। जीवन के संघर्षों की